प्रमा की नयी परिभाषा

प्रो. संगमलाल पाण्डेय

अध्यक्ष : दर्शन विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद ।

जैन दर्शन ने दर्शन और ज्ञान में जो अन्तर किया है वह मुझे पूर्णतया प्रमाणित लगता है। उसने चारित्र पर जो बल दिया है वह उसका सर्वश्रेष्ठ पक्ष है। सम्यक्दर्शन, चारित्र तथा ज्ञान - ये त्रिविध व्यापार जिस ज्ञानराशि को उत्पन्न करते हैं उसे मैं संदर्शन कहता हूँ, उससे संदर्शनशास्त्र का जन्म होता है। स्पष्ट है कि जैनों के यहाँ दर्शन शब्द द्र्यर्थक है। 'सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः" इस सूत्र में दर्शन का जो अर्थ है वह उस मोक्षविद्या से भिन्न है जो इसी सूत्र में मोक्षमार्ग से अभिहित की गई है। वस्तुतः समग्र मोक्षमार्ग दर्शन नहीं प्रत्युत संदर्शन है। इस संदर्शन में दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र के घटक हैं। ऐसा जैन दार्शनिकों के विश्लेषण से सिद्ध है।

अतः मैं एक नई दृष्टि या दार्शनिकधारा का प्रवर्तन करना चाहता हूँ। उसे मैं संदर्शनशास्त्र कहता हूँ। संदर्शन का मूल अभिप्राय समस्त दर्शनों में संप्राप्त बोध या प्रातिभ ज्ञान की व्यापकता को प्रकाशित करना है और उसी के आधार पर एक सम्पूर्ण विचारधारा का निर्माण करना है। वास्तव में संदर्शन त्रिवलयात्मक है। दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र इसके वलय हैं। इसका तात्पर्य यह है कि संदर्शन की उत्पत्ति में दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र की भूमिका है।

वास्तव में सत्ता की सूचना या उसको बतलाने की शक्ति मात्र ज्ञान में रहती है। दर्शन तथा चारित्र याचितमण्डन न्याय से ही सत्ता के बोधक या वाचक हैं अर्थात् उनके द्वारा जिस प्रकार सत्ता का परिचय होता है वह ज्ञान से याचित है, ज्ञान से उधार लिया गया है। ज्ञान भी मात्र ज्ञापक होता है, कारक नहीं। वह विषय की ज्ञापना करता है, उसकी सृष्टि नहीं करता। दृष्टि-सृष्टि नहीं है वह ज्ञप्ति है किन्तु दर्शन तथा चारित्र में कारकत्व की विशेषता है। वे गुणाधान करते हैं। जिस सत् का परिचय ज्ञान से होता है वे उसमें गुणों की सृष्टि करते हैं अथवा उसको बौद्धिक प्रकारों में बाँटते हैं।

उनके ये व्यापार सत्ता का अन्यथाकरण नहीं कर सकते, उसका विद्रूपण नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञान के किसी प्रकार या सहयोगों में कुर्वद्रूपता नहीं है--उसमें अर्थक्रियाकारित्व भी नहीं है। उसमें केवल अर्थप्रकाशकत्व है। गुण-सृष्टि से इस प्रकाश का ही बोध कराया जाता है वह स्वयं गौण है, मुख्यार्थ नहीं।

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र में जो सम्यक्त्व है उसके कारण मोक्षविद्या जिसे संदर्शनशास्त्र कहा जा रहा है सयम्क्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से विशेषित है। संदर्शनशास्त्र में सम् उपसर्ग इसी सम्यक्त्व का द्योतक है। वह संदर्शनशास्त्र को सम्यक्दर्शनशास्त्र, सम्यक्ज्ञानशास्त्र तथा सम्यक्-चारित्रशास्त्र बनाता है। इस कारण सम्यक्त्व या प्रमात्व उसका प्रमुख लक्षण है। संदर्शनशास्त्र मूलतः प्रमाशास्त्र है।

अब प्रश्न उठता है कि संदर्शनशास्त्र में प्रमा किसे कहते हैं? प्रमा ज्ञान है। ज्ञान सदैव सत्य होता है उसके विशेषण के रूप में सत्य का प्रयोग करना गलत है। 'सत्यज्ञान' ऐसी पदावली का जो प्रयोग करते हैं वे वस्तुतः ज्ञान शब्द के अर्थ से अनभिज्ञ हैं। प्रमा ज्ञान है और ज्ञान प्रमा है। पाश्चात्य दर्शन के प्रभाव के कारण उसे हम सत्यता भी कह सकते हैं। सत्यता ज्ञान का गुण नहीं है किन्तु स्वयं ज्ञान है, वह ज्ञान भी आकारता-प्रकारता है।

पुनश्च जैसा कि ऊपर कहा गया है ज्ञान भी वस्तुतः संदर्शन का एक विशेष घटक है। यह ज्ञान बोध-रूप तथा वृत्ति-रूप से द्विविध है। इसको अंग्रेज दार्शनिक जार्ज बर्कले ने बोध (नोशन) द्वारा ज्ञान तथा वृत्ति (आइडिया) द्वारा ज्ञान कहा था किन्तु वह अनुभववाद से इतना प्रभावित था कि वह इन दोनों प्रकारों का एक-दूसरे से मेलापक न कर सका। उसकी सूझ इस कारण फलितार्थ नहीं हुई। बर्कले मात्र वृत्ति-ज्ञान के विश्लेषण तक सीमित रह गये। वे यह नहीं समझ पाये कि वृत्ति-ज्ञान के प्रमापकत्व के लिए बोध की नितांत आवश्यकता है। उनसे अधिक गम्भीर विश्लेषणकर्ता अठारहवीं शती के अद्वैत वेदान्ती महादेवानन्द सरस्वती थे जिन्होंने वृत्तिज्ञान की प्रामाणिकता में बोध की अनिवार्यता पर बल दिया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ' में जो उनके स्वरचित तत्त्वानुसन्धान की स्वोपज्ञटीका है—कहते हैं कि प्रमा का लक्षण निम्न दो प्रकारों से किया जा सकता है—

(१) बोधेद्धा वृत्तिः प्रमा
(२) वृत्तीद्धो बोधः प्रमा

सर्वप्रथम इन लक्षणों में 'इद्ध' शब्द की व्याख्या अपेक्षित है। कोशकारों ने इद्ध का अर्थ प्रज्वलित या प्रकाशित किया है यह इन्ध धातु से निष्पन्न हुआ है। इसी से ईंधन शब्द बना है जो जलाने की सामग्री या वस्तु के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार 'इद्ध' शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाने पर प्रमा की उपर्युक्त परिभाषाएँ इस प्रकार रखी जा सकती है—

(१) बोध से प्रज्वलित वृत्ति प्रमा है।
वृत्ति से प्रज्वलित बोध प्रमा है।

प्रथम लक्षण के अनुसार वृत्ति-ज्ञान तभी प्रमा होता है जब वह बोध से प्रज्वलित हो अर्थात् बोध से व्याप्त वृत्ति प्रमा है। यदि वृत्ति बोध से व्याप्त नहीं है तो वह अप्रमा है। इसी प्रकार दूसरे लक्षण के अनुसार वृत्ति से व्याप्त बोध प्रमा है और जो बोध वृत्ति से व्याप्त नहीं है वह अप्रमा है। इसी प्रकार दूसरे लक्षण के अनुसार वृत्ति से व्याप्त बोध प्रमा है और जो बोध-वृत्ति से व्याप्त नहीं है वह अप्रमा है।

यहाँ व्याप्य-व्यापक भाव की व्याख्या अपेक्षित है। दोनों लक्षणों को एक साथ देखने पर ज्ञात होता है कि वृत्तिव्याप्य बोध अथवा बोध-व्याप्य वृत्ति प्रमा है अर्थात् बोध तथा वृत्ति दोनों में परस्पर व्याप्य-व्यापकभाव है। जैसे बोध व्यापक है और वृत्तिव्याप्य है, वैसे वृत्ति भी व्यापक है और बोध व्याप्य है। ऐसा होने पर अनन्यता सम्बन्ध की सिद्धि होती है किन्तु बोध और वृत्ति में परस्पर अनन्यता सम्बन्ध नहीं है। कारण दोनों में महान् अन्तर है। बोध-अखण्ड है, वृत्ति खण्डित है। बोध अव्यभिचरित है, वृत्ति व्यभिचरित है। बोध स्वयंसिद्ध या सदावर्तमानस्वरूप हैं, वृत्ति आगन्तुक या आगमापायी है। बोध वत्ति-व्याप्य है, किन्तु फल-व्याप्य नहीं है, परन्तु वृत्ति फल-व्याप्य भी है। वह मात्र बोध-व्याप्य नहीं है। अतः जहाँ तक वृत्ति की फलव्याप्यता के प्रामाण्य का प्रश्न है, वहाँ तक उपर्युक्त लक्षण उस पर लागू नहीं होता। इसका स्पष्टार्थ यह है—जब हमें किसी घट का ज्ञान होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तब हमारे मन में घटवृत्ति उत्पन्न होती है यदि इस घटवृत्ति का सन्धान बोध से होता है तो यह वृत्ति प्रमा हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि जब घटवृत्ति प्रमाणित हो जाती है और उसके विषय घट को हम यथार्थ पदार्थ मान लेते हैं।

घट घटवृत्ति का फलव्याप्य है, वह घट-वृत्ति का फलितार्थ है। यह फलितार्थ वृत्ति से भिन्न एक वस्तु है। घट-वृत्ति की प्रामाणिकता से प्रायः घट की यथार्थता मान ली जाती है, किन्तु यह लोकमत है। प्रमा के लक्षण द्वारा घटवृत्ति का प्रमात्व तो सिद्ध होता है किन्तु घट की यथार्थता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि घट में बोध-व्याप्यत्व नहीं है। घट-वृत्ति में बोध-व्याप्यत्व है, अतः वह प्रमा है किन्तु घट में बोध व्याप्यत्व न होने के कारण वह अप्रमा की कोटि में आ जाता है। यही कारण है कि घट के स्वरूप, घट की भूततत्त्व आदि को लेकर वैज्ञानिकों में विवाद उठते रहते हैं। घट मृण्मय है। किन्तु मृतिका क्या है ? उसके घटक क्या हैं ? उन घटकों के घटक क्या हैं ? इस अनुसन्धान परम्परा में अनवस्था आ जाती है। इसमें कहीं स्वेच्छा से विराम कर दिया जाता है और एक अभ्युपगम या कल्पना बना ली जाती है। उसी के आधार पर हम कहते हैं कि घट या घट का कोई अन्तर्तत्त्व यथार्थ पदार्थ है। वस्तुतः यह यथार्थ पदार्थ—तथाकथित अभ्युपगम-अधीन या कल्पना-कल्पित है इसीलिए आधुनिक विज्ञान दर्शन में माना जाता है कि सभी तथ्य सिद्धांतधारक हैं। वे किसी सिद्धांत पर अवलम्बित हैं और उसी में ओत-प्रोत हैं। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि जो फलव्याप्य वृत्ति है वह भी अन्ततोगत्वा फल-व्याप्य नहीं है प्रत्युत धारावाहिक ज्ञान के अन्तर्भूत होने के कारण वृत्तिव्याप्य ही है परन्तु यह अवांतर प्रश्न है। सामान्यतः वृत्ति-व्याप्यत्व और फल-व्याप्यत्व में अन्तर किया जाता है।

इस प्रकार वृत्ति-व्याप्यता को केन्द्र में रखकर प्रमा की परिभाषा की गई है। यद्यपि यह परिभाषा मूलतः अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है जिसके अनुसार जागतिक वस्तुएँ केवल साक्षिमात्र हैं तथापि इसका समर्थन आधुनिक विज्ञान-दर्शन तथा तर्कशास्त्र से भी होता है। प्रकाश्य—प्रकाशक सम्बन्ध ही सत् है।

'वीचितरंगन्याय'से वह इसी सत् से अविनाभूत है। सत् ही सार है। उसकी वृत्तियों का सार उनकी धारावाहिकता मात्र है।

पुनश्च बोध वृत्ति-रहित नहीं हो सकता। जो लोग वृत्तिशून्यता या वृत्ति-निरोध को बोध का लक्षण मानते हैं, उनका मत अस्पष्ट तथा असंगत है। बोध सदैव वृत्ति-व्याप्य रहता है। इसके लिए चेतना के केन्द्र जैसे मन, चित्त, अहंकार बुद्धि या पुरुष या ईश्वर की अपेक्षा रहती है। किन्तु बोध इन सब वृत्तियों से भिन्न है। वह प्राचीन तथा नित्यसिद्ध है तथा ये वृत्तियाँ अर्वाचीन और आगन्तुक हैं। बोध ऐसी असंख्य वृत्तियों को आत्मसात् किये रहता है और उसके लिये ये वृत्तियाँ मात्र बिन्दु की भाँति हैं जिनका कोई स्वतः अस्तित्व नहीं है। किन्तु बोध और वृत्ति का योगपद्य या सहभाव प्रमा है। वही ज्ञान है। वह विषय—विषयिभाव नहीं है, क्योंकि बोध न तो विषयी है और न वृत्ति विषय है। वह अपरोक्ष अनुभव है और निरपेक्ष सत् है इसी अर्थ में प्रमा सत् है और सत् प्रमा है। अंग्रेज दार्शनिक एफ. एच. ब्रैडले इसी संदर्शन से अपने दर्शनशास्त्र का पर्यवसान करते हैं। अद्वैत वेदान्त बोध को परब्रह्म तथा सर्वाधिक अव्यभिचरित वृत्ति को ईश्वर या अपरब्रह्म कहता है। बोध और वृत्ति का यह सहभाव परापर ब्रह्म का सहभाव है। इसी आधार पर एकेश्वरवाद और निरपेक्ष सद्वाद को अभिन्न माना जाता है।

वस्तुतः प्रमा की इस नयी परिभाषा से एक प्रकार का नया दर्शनशास्त्र आरम्भ होता है जिसे संदर्शनशास्त्र कहा जा सकता है। उसमें प्राचीन सभी दार्शनिकों को प्रामाणिक अन्तर्दृष्टियों का समावेश है। मुख्यतः यह ज्ञान के बोध-पक्ष और वृत्ति-पक्ष तथा उनके सम्बन्ध को प्रामाणिकता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org